आचार्य नागार्जुन रचित

बोधिचित्तविवरण

नमः श्री वज्रसत्वाय।

सर्व स्वभाव से विगत–स्कन्ध–धातु–आयतन–ग्राह्य–ग्राहक स्वभाव से विवर्जित, धर्म नैरात्म्य से समता के कारण स्वचित्त आदितः अनुत्पन्न एवं शून्यता–स्वभाव है, इस प्रकार तथागतवैरोचन के द्वारा कहा गया है।

मैं बोधिचित्त के साक्षात् स्वरूप श्रीवज्रधर को नमस्कार करके भवनाशक बोधिचित्त की भावना को कहूँगा।1।

सभी बुद्धों ने परमार्थ बोधिचित्त को आत्मा, स्कन्ध आदि के रूप में विज्ञापित करने वाली कल्पनाओं से अनावृत सदा शून्यता लक्षण वाला है।2।

करुणामय भगवान बुद्ध ने जिस बोधिचित्त की नित्य भावना की थी, करुणार्द्रचित्त से उस बोधिचित्त की सभी को यत्नपूर्वक भावना करनी चाहिए।3।

तैर्थिको के द्वारा कल्पित जो आत्मा है वह युक्ति के द्वारा विवेचना करने पर स्कन्धों के मध्य में या उनसे बाहर कहीं भी प्राप्त नहीं होता है।4।

स्कन्ध हो तो वह नित्य नहीं हो सकता। वे भी सस्वभाव नहीं होते हैं। जहॉ कहीं ही नित्य और अनित्य इन दो में स्वभाव से आधार–आधेयभाव कभी नहीं हो सकता।5।

आत्मा नाम की कोई वस्तु सत्य नहीं है तो उसमें नित्य कर्तृत्व आदि धर्म की सत्ता कैसे प्रज्ञपित होगी? लोक में धर्मी की सत्ता विद्यमान होने पर ही धर्म का विचार–विमर्श होता है।6।

क्योंकि नित्य में क्रमशः अथवा युगपद् अर्थक्रिया कारित्व नहीं हो सकता इसलिए बाह्य और आन्तरिक में उस नित्यभाव की सत्ता नहीं है।7।

यदि समर्थ है तो अपेक्षा क्यों करता है? वह तो सभी भाव उत्पन्न कर देगा। यदि परभाव की अपेक्षा करता है तो फिर वह नित्य एवं समर्थ नहीं होगा।8।

यदि वस्तु है तो वह नित्य नहीं हो सकती क्योंकि वस्तु सदा क्षणिक होती है। इसलिए अनित्य वस्तु में कर्तृत्व का निषेध नहीं किया गया है।9।

आत्मा–आदि से रहित इस लोक स्कन्ध, धातु, आयतन तथा ग्राह्य–ग्राहक हैं,वे बुद्धि के द्वारा नष्ट हो जाती हैं।10।

हितैषी लोगों ने रूप,वेदना,संज्ञा,संस्कार एवं विज्ञान इस प्रकार पॉच स्कन्धों की देशना श्रावकों के लिए की है।11।

श्रेष्ठ बुद्धों ने सदा ही रूप को फेनपिण्डोपम,वेदना को जल–बुदबुदे सदृश,संज्ञा को मरीच के समान,संस्कार को कदली सदृश और विज्ञान को मायोपम कहकर इस प्रकार के स्कन्धों की देशना बोधिसत्वों के लिए की है।12,13।

रूप स्कन्ध को चार महाभूतात्मक बताया गया है क्योंकि उनके साथ रूप का सम्बन्ध है। सिद्ध है कि शेष विदनादि चार स्कन्ध अरूपी हैं।14।

उन स्कन्धों में गिने जाने वाले चक्षु, रूप आदि धातुओं के अन्तर्गत कहे गये हैं, उन्हीं को आयतन तथा ग्राह्य–ग्राहक के रूप में भी जानना चाहिए।15।

रूप, अणु एवं इतर ग्राहक इन्द्रिय की सत्ता स्वभाव से नहीं है। अतः करण रूपी इन्द्रिय का अत्यन्त अभाव होने से उत्पादक एवं उत्पाद दोनों का परमार्थतः उत्पाद युक्त नहीं है।16।

रूप परमाणुओं से इन्द्रिय–ज्ञानों का उत्पाद नहीं होता है क्योंकि वे इन्द्रिय से अतीत होते हैं। यदि उनका उत्पाद अणुओं के द्वारा माना जाऐगा तो उस प्रकार के संचित द्रव्य की सत्ता भी अभीष्ट नहीं हैं।17।

दिग्–भेद से विभाजन करने पर परमाणु में भी भेद दृष्टि–गोचर होता है। जिस में अवयव परीक्षण किया जा सकता है, वह परमाणु निरवयव कैसे हो सकता है।18।

एक ही आकार वाले बाह्यार्थ में विभिन्न ज्ञानों की प्रवृत्ति देखी जाती है। जो रूप मनोहर है वहीं दूसरे के लिए दूसरा ही हो जाता है।19।

एक ही स्त्री शरीर के प्रति परिव्राजक, कामी एवं कुत्ते को क्रमशः शव, कामिनी एवं भोज्य तीन विभिन्न प्रकार की विकल्पनाऐं होती हैं।20।

बाह्यार्थ अर्थक्रिया होती है। जैसे स्वप्न में दोष होते हैं। अतः स्वप्न एवं जाग्रत अवस्थाओं में अर्थक्रिया–कारित्व में अन्तर नहीं होता है।21।

ग्राह्य एवं ग्राहक के रूप में जो विज्ञान में प्रतिभासित होता है वह विज्ञान ही है। उससे भिन्न और कोई बाह्यार्थ नहीं है।22।

अतः वस्तु के स्वभाव में बाह्यार्थ कदापि सत्य नहीं होता है।चक्षु आदि में विभिन्न प्रकार के आभास वाले ये विज्ञान रूप आदि के आकार में प्रतिभासित होते हैं।23।

जैसे सम्मूढ चित्त वाले पुरुष को माया, मरीचि, गन्धर्वनगर आदि दिखाई पड़ते हैं, उसी प्रकार रूपादि का दर्शन होता है।24।

आत्मग्राह की निवृत्ति के लिए स्कन्ध, धातु आदि की देशना दी है। चित्तमात्रता में स्थित होकर बोधिसत्व लोगों को उस चित्तमात्रता को ही त्यागना होता है।25।

विज्ञानवादियों के मत में नाना प्रकार के ये सभी धर्म चित्तस्वरूप में ही सिद्ध हैं। विज्ञान या चित्त का स्वरूप क्या है? अब इसे बताने जा रहा हूँ।26।

''चित्तमात्रमिदं सर्व'' इस प्रकार मुनि ने जो देशना दी है, बाल–प्रथग्जनों के भय निवारणार्थ ही दी है न कि तत्वतः।27।

परिकल्पित, परतंत्र तथा परिनिष्पन्न ये तीनों लक्षण एकमात्र शून्यतास्वभाव वाले चित्त में ही प्रज्ञप्त हैं।28।

महायान के प्रति अधिक रुचि रखने वाले के लिए धर्मनैरात्म्य से समता रखने वाले तथा आदितः अनुत्पन्न स्वचित्त को बुद्ध ने संक्षेप रूप में कहा है।29।

योगाचार लोग स्वचित्त का अधिकार करके आश्रयपरावृत्त चित्त को प्रत्यात्मगतिगोचर कहते हैं।30।

जो अतीत है वह सत् नहीं है और जो अनागत है वह अप्राप्त है। वर्तमान की स्थिति होने से आश्रयपरावृत्ति होगी? यानी नहीं हो सकती।31।

(षड् विज्ञानों का जो आलम्बन है) वह यथावत् रूप में उस(आलयविज्ञान) को प्रतीत नहीं होता है,उसे जैसा प्रतीत होता है वह यथास्थिति में नहीं है। विज्ञान के नैरात्म्य स्वभाव होने से उससे अतिरिक्त अन्य कोई (कर्मफल) का आलय विज्ञान नहीं है।32।

जैसे चुम्बक के निकट आने पर लोहा शीघ्रता से चक्कर काटने लगता है, पर उस में चित्त नहीं होता है,चित्त से युक्त जैसा दिखाई पड़ता है।33।

उसी प्रकार आलयविज्ञान के असत्य होने पर भी जब तक उसका सत्य के सदृश गमनागमन एवं संचार होता है तब तक भव का ग्रहण होता है।34।

जैसे समुद्रगत काष्ठ में चित्त न होने पर भी प्रचलन होता है। उसी प्रकार आलयविज्ञान काय में आश्रित होकर प्रवृत होता है।35।

काय के विना तदाश्रित विज्ञान के असत् होने की यदि परिकल्पना करना है तो उन प्रत्यात्मगति की क्या स्थिति बनेगी भी कहना होगा।36।

(विज्ञानवादियों) ने प्रत्यात्मगति के (विषय में) जो कहा है वह वस्तु सत्ता के (आधार) पर ही उक्त होता है। उसे ''यह है'' इस प्रकार व्यक्त करने में वे असमर्थ हैं ऐसा भी कहते हैं।37।

(जिस प्रकार) स्वयं निश्चय किया जाता है उसी प्रकार दूसरों को भी निश्चय कराने के लिए विद्वान लोग सदा अभ्रान्त रूप से प्रवृत्त होते हैं।38।

ज्ञान के द्वारा ज्ञेय का बोध होता है। ज्ञेय के बिना ज्ञान सम्भव नहीं है। अतः(इस स्थिति में विज्ञानवादी लोग) संवेद्य तथा संवेदक नहीं है, (ऐसा) क्यों नहीं मानते?।39।

चित्त नाममात्र है और नाम के अलावा और कुछ भी नहीं है। उसे नाममात्र के (रूप) में विज्ञप्त देखना चाहिए और नाम भी निःस्वभाव है।40।

आभन्यतर या बाहर या इन दोनों के बीच में बुद्धों को (स्वभाव सत्ता वाला) चित्त प्राप्त नहीं हुआ। इस लिए कि चित्त माया स्वरूप का है।41।

वर्ण एवं आकार के भेद में ग्राह्य एवं ग्राहक के रूप में या पुरुष, स्त्री, नपुंसक आदि के रूप में चित्त स्थित नहीं होता है।42।

संक्षेप में बुद्धों के द्वारा न तो देखा गया और न देखा जाऐगा। निःस्वभाव स्वभाव वाले को किस प्रकार देखा जा सकता है?।43।

भाव तो कल्पना है। कल्पना का अभाव ही शून्यता है। जहॉ कल्पना का आभास होता है वहॉ शून्यता कैसे हो सकती है?।44।

बोध्य–बोधक के आकार वाला चित्त तथागतों ने नहीं देखा। जहॉ बोद्य–बोधक विद्यमान हैं वहॉ संबोधि सम्भव नहीं होती।45।

अलक्षण, अनुत्पाद, असंस्कृत एवं अवाच्य स्वरूप वाला आकाश सदृश बोधिचित्त तथा संबोधि अद्वयलक्षण ही है।46।

बोधिमण्डमें प्रविष्ट महात्मा बुद्ध तथा महाकृपालु(बोधिसत्वों) ने हमेशा शून्यता को आकाश की भॉति जाना है।47।

इसलिए सभी धर्मों की अधिष्ठान, शान्त, माया की भॉति आधार से रहित तथा भव को नष्ट करने वाली उस शून्यता की नित्य भावना करनी चाहिए।48।

अनुत्पाद, शून्यता,नैरात्म्य नामों को लेकर स्वयं तथा हीनयान से युक्त होकर जो शून्यता की भावना की जाती है वह उस (शून्यता) की (वास्तविक) भावना नहीं हो सकती है।49।

कुशल एवं अकुशल विकल्प की सन्तति से विच्छिन्न लक्षण वाली शून्यता को भगवान बुद्ध ने कहा था, उससे अतिरिक्त शून्यता अभीष्ट नहीं है।50।

निरालम्ब चित्त के द्वारा आकाश–लक्षण में स्थित रहकर लोग शून्यता की जो भावना करते है उसे आकाश भावना (सदृश) माना गया है।51।

शून्यता के सिंहनाद द्वारा सभी वादियों कर भयभीत कर देते हैं। जिन जिन में उस (सिंहनाद) का प्रवेश होता है उन उन में शून्यता के (ज्ञान आदि) हो जाते हैं।52।

जिसका विज्ञान क्षणिक है उस की नित्यता नहीं हो सकती है। चित्त अनित्य है तब उसके शून्य होने में क्या विरोध है?।53।

संक्षेपतः बुद्धों ने चित्त को अनित्य ही माना है। तब वे (विज्ञानवादी) लोग चित्त की शून्यता क्यों नहीं मानते हैं?।54।

अनादि काल से चित्त स्वभावतः सदा असत् ही रहा है। स्वभावतः सिद्ध वस्तु को निःस्वभाव नहीं कहा गया है।55।

इस कथन से चित्तगत आत्मसत्ता का निराकरण किया गया है। अपने स्वरूप से अतीत हो जाना धर्मों की धर्मता नहीं है।56।

जैसे गुड की प्रकृति मधुर तथा अग्नि की प्रकृति उष्ण होती है उसी प्रकार सभी धर्मों की प्रकृति शून्यता अभीष्ट है।57।

(समस्त धर्मों की) प्रकृति से शून्यता निरूपित करने से कोई उच्छेदवादी नहीं हो जाता है और इस से कोई शाश्वतवादी भी नहीं हो जाता।58।

अविद्या से लेकर जरा मरण पर्यन्त बारहअंग प्रतीत्यसमुत्पाद वाले (सभी) कार्य (कारण भाव) को मैं स्वप्न एवं माया की भाति मानता हूँ।59।

द्वादशांग (प्रतीत्यसमुत्पाद) का यह चक्र संसार के मार्ग में घूमता रहता है। इससे अन्यत्र प्राणियों का कोई कर्मफलोपभोग मान्य नहीं है।60।

जैसे दर्पण पर आश्रित होकर मुखमण्डल का आभास होता है पर वह उस में संक्रमित नहीं हुआ करता है और उस दर्पण के विना भी उस का आभास नहीं होता है।61।

उसी प्रकार स्कन्धों की प्रतिसन्धि होती है और संसार में अन्य उत्पाद आदि भी संक्रमित होकर नहीं होता है(ऐसा) विद्वानों को हमेशा समझना चाहिए।62।

संक्षेपतः शून्य धर्मों से शून्यों धर्मों का उद्भव होता है। कर्ता, कर्म–फल (तथा उस के) उपभोग की देशना बुद्धों ने संवृतितः दी है।63।

जैसे दुन्दभि–स्वर तथा अंकुर का उत्पाद समूह की अपेक्षा से होता है। उसी प्रकार बाह्य प्रतीत्यसमुत्पाद को स्वप्न एवं माया की भॉति मैं मानता हूॅ।64।

धर्मों के हेतुतः उत्पाद में कदापि विरोध नहीं होता क्योंकि हेतु तो हेतु से ही शून्य है। अतः उसका अनुत्पन्न के रूप में बोध होता है।65।

धर्मों के उत्पाद को ही शून्यता कहा गया है। संक्षेपतः पॉच स्कन्धों को ही सर्वधर्म– इस प्रकार कहा गया है।66।

तत्व की यथावत देशना से संवृत्ति का विच्छेद नहीं होगा। संवृत्ति से भिन्न रूप में तत्व का आभास नहीं होता है।67।

क्योंकि संवृत्ति से शून्य है और शून्यता भी संवृत्ति के आधार पर कही गई है। इस लिए दोनों में अविनाभाव (सम्बन्ध) नियत है। जैसे कृतकत्व एवं अनित्यता में।68।

संवृति क्लेश एवं कर्मों से समुत्पन्न हैं। कर्म का उत्पाद चित्त से होता है। चित्त वासनाओं के संचय से होता है। वासनाओं से मुक्त होना ही सुख है।69।

सुखी चित्त ही शान्त है। शान्तचित्त असम्मूढ होता है। मोह रहित होने से तत्व का ज्ञान होता है और तत्वज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है।70।

(परमार्थ बोधिचित्त के विषय को) तथता, भूतकोटि, अनिमित्त, परमार्थ, परमबोधिचित्त, तत्व तथा शून्यता भी कहा गया है।71।

जे लोग शून्यता नहीं जानते वे मोक्ष के पात्र नहीं बनते हैं। वे मूढ लोग षड्गति रूपी भव–कारागार में घूमते रहते हैं।72।

इस प्रकार योगी जनइ स शून्यता की भावना करें तो (उनकी) बुद्धि निःसंदेह परार्थ के प्रति अनुरक्त होगी।73।

जिन लोगों ने माता, पिता तथा बन्धु होकर पूर्व जन्मों में हमारे प्रति उपकार किया है उन सभी सत्वों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहिए।74।

भव कारागार में क्लेश–अग्नि से सतप्त सत्वों को मैंने जैसे कष्ट पहुॅचाया था उसी प्रकार सुख पहुॅचाना (सर्वथा) युक्त है।75।

क्योंकि लोक में सुगति एवं दुर्गति रूपी इष्ट और अनिष्ट फल हैं, वे सत्वों के प्रति उपकार एवं अपकार से होते हैं।76।

सत्वों के आश्रय से अनुत्तर बुद्धत्व पद प्राप्त हो जाता है तो ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, लोकपाल आदि के पद प्राप्त होने में क्या आश्चर्य है।77।

सत्व मात्र के उपकार से प्राप्त न होने वाली कोई भी उपभोग्य वस्तु त्रिलोक में देव तथा मनुष्यों के लिए नहीं होती है।78।

नारकीय सत्व, प्रेत तथा तिर्यक में जो विविध दुःख–भाव सत्वों को अनुभूत होते है। वे सब सत्वों के प्रति कर्मों से ही होते हैं।79।

भूख, प्यास, परस्पर प्रहार तथा हत्या से होने वाले दुःखों का निराकरण करना कठिन है तथा वे अक्षय भी होते हैं। वे तो सत्वों को बाधा पहुॅचाने के ही फल हैं।80।

बुद्ध, बोधिसत्व सुगति तथा दुर्गति सत्वों के विपाक का स्वरूप भी दो प्रकार का समझना चाहिए।81।

(सत्वों की) सभी वस्तुओं से सेवा करनी चाहिए। अपने शरीर की भॉति रक्षा करनी चाहिए। सत्वों के प्रति स्नेह रहित होना तो विष की भॉति यत्नपूर्वक त्यागना चाहिए।82।

श्रावक लोगों को (सत्वों के प्रति) स्नेह रहित होने के कारण क्या हीन बोधि प्राप्त नहीं हुई है? सत्वों के अपरित्याग के कारण (बोधिसत्वों को) बुद्ध की सम्यकसंम्बोधि भी प्राप्त हुई है।83।

इस प्रकार हित और अहित से होने वाले फल का विचार करने पर वे (बोधिसत्व) लोग एक क्षण भी स्वार्थ में अनुरक्त होकर कैसे रह सकेंगे?।84।

दृढ करुणामूलक बोधिचित्त रूपी अंकुर से समुत्पन्न परोपकारात्मक फल बोधि की जिन–पुत्रों के द्वारा भावना की गई है।85।

उस भावना में (जिन्होंने) दृढता प्राप्त की है, (वे) परम दुखों से खिन्न होकर ध्यान सूख को भी त्याग कर नरक में भी प्रवेश करते हैं।86।

यही तो आश्चर्य है और यही प्रशंसनीय भी है। यही पुरुषों का परम नय है। इन लोगों के द्वारा स्वशरीर तथा वस्तुओं का दान दे देना आश्चर्य नहीं है।87।

सभी धर्म शून्य है, यह जानकर भी जो कर्म एवं फल की (सारी व्यवस्था समुचित ढंग से) सम्पन्न हो जाती है यही आश्चर्य से भी आश्चर्य तथा अद्भुत से भी अद्भुत है।88।

जो सत्वों के परित्राण के इच्छुक हैं वे लोग भवपंक में जन्म लेने पर भी उससे उत्पन्न होने वाले दोषों से अलिप्त रहते हैं जैसे जल में कमल दल।89।

समन्तभद्र आदि जिनपुत्रों द्वारा शून्यता ज्ञान रूपी अग्नि के द्वारा क्लेश रूपी ईधनों को जला डालने पर भी वे करुणा से आर्द्र रहते हैं।90।

करुणा के वशीभूत रहने वाले वे अवतरण,जन्म, लीला,गृहत्याग, कठोर तपस्या,महाबोधि, मारदमन,धर्मचक्रप्रवर्तन, देवलोक में प्रवेश और उसी प्रकार परिनिर्वाण का प्रदर्शन किया करते हैं।91,92।

व्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, रुद्र आदि के रूप में निर्मित कर वे सत्व–विनयन–प्रयोग के द्वारा महाकरुणामय लीला करते हैं।93।

भव मार्ग से दुःखित लोगों के विश्राम के लिए तथा महायान में प्रवेश के लिए (श्रावक एवं प्रत्येकबुद्ध के) दोनों ज्ञानों (यानि दोनों यानों) की भी देशना दी गई है, न कि परमार्थतः।94।

जब तक बुद्ध के द्वारा प्रेरित नहीं किये जाते तब तक (निरुपधिशेष निर्वाण प्राप्त आर्य) श्रावक लोग ज्ञानमय भव के रूप में समाधि (सुख) उन्माद से संमूर्छित होकर स्थित होते है।95।

(बुद्ध के द्वारा) प्रेरित होने पर नाना रूपों के द्वारा सत्वों के प्रति स्नेह युक्त होकर पुण्य एवं ज्ञान सम्भारों का संचय करने पर बुद्ध की बोधि प्राप्त हो जाती है।96।

(दो आवरण या ग्राह्य–ग्राहक) द्वय की वासना के (मूलरूप में) विद्यमान होने से वासना को (भव का) बीज कहा गया है। उन बीज रूपी वस्तुओं के संग्रहीत होने पर भव रूपी अंकुर का उत्पाद होता है।97।

लोकनाथों के द्वारा दी गई देशनाऐं सत्वों के आशयवश होती है। तदनुसार लोक में विविध उपायों से वे अनेक हो जाती हैं।98।

गम्भीर एवं उदार भेद कसे तथा कही पर दोनों लक्षणों से युक्त होने से देशना के विभिन्न होने पर भी शून्यतारूप एवं अद्वयलक्षण की दृष्टि से वे अभिन्न ही हैं।99।

धारिणी, भूमि तथा जो बुद्ध पारमिताऐंह ँ उन्हें बुद्धों ने बोधिचित्त के अवयव के रूप में कहा है।100।

काय,वाक एवं चित्त के द्वारा सदा उस प्रकार का सत्वार्थ करने वाले उन शून्यतावादियों पर उच्छेदवाद का विवाद लागू नहीं होगा।101।

बोधिसत्व लोग संसार एवं निर्वाण में स्थित नहीं होते है। इसलिए बुद्धों ने यहॉ अप्रतिष्ठितनिर्वाण की देशना दी है।102।

स्वार्थ एवं परार्थ के लिए पुण्य के हेतु स्वरूप करुणात्मक रस तथा शून्यता के परम रस को जो लो पीते है वही जिनपुत्र हैं।103।

सभी भावों द्वारा आदर पूर्वक उनकी वन्दना करनी चाहिए। वे तीनों लोकों में सदा पूजनीय होते हैं और वे लोक–नायक बुद्धवंश को धारण करने के लिए ही विद्यमान रहते हैं।104।

यही बोधिचित्त महायान में परम कहा गया है। सयत्न समाहित होकर बोधिचित्त का उत्पाद करना चाहिए।105।

स्वार्थ एवं परार्थ साधने के लिए संसार में बोधिचित्त के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। बोधिचित्त से अतिरिक्त उपाय बुद्ध ने पहले नहीं देखा।106।

बेधिचित्त के उत्पाद मात्र से जो पुण्यराशि प्राप्त होती है, यदि वह रूपी (धर्म) होती तो आकाश धातु को भरकर उससे भी अधिक हो जाती।107।

क्षण मात्र के लिए भी कोई पुरुष बोधिचित्त की भावना कर ले तो उस कर पुण्यराशि को मापने में बुद्ध भी सक्षम नहीं हो सकते हैं।108।

क्लेश से रहित यह चित्तरत्न ही एक मात्र परम धन है क्योंकि क्लेशमार आदि चोरों के द्वारा इसका न तो विनाश तथा न अपहरण ही होता है।109।

जैसे संसार में बुद्ध तथा बोधिसत्वों के प्रणिधान अचल एवं स्थिर होते हैं उसी प्रकार बुद्धि से बोधिचित्त परायण (बोधिसत्वों) को (उस बोधिचित्त की भावना) करनी चाहिए।110।

ऊपर कही गई अद्भुत विशेषताओं के कारण (उस बोधिचित्तोत्पाद के अभ्यास) में आप लोगों को प्रयत्न करना चाहिए। तत्पश्चात् समन्तभद्रचर्याओं का स्वयं बोध हो जाएगा।111।

उत्तम जिनों के द्वारा प्रशंसित बोधिचित्त की स्तुति करने से जो अतुलनीय पुण्य आज मुझे प्राप्त हुआ है उससे भवसागर की तरंगों में डूबे हुए सत्व बुद्ध द्वारा उपदेशित मार्ग पर चलें,ऐसी कामना करता हूँ।112।

महात्मा आचार्य नागार्जुन द्वारा विरचित बोधिचित्त विवरण समाप्त।

भारतीय उपाध्याय गुणाकर तथा लोचाव ''रब–शि–ब्शेस्–ग्ञेन''(प्रशान्तमित्र) के द्वारा अनुदित एवं सम्पादित तथा बाद में भारतीय उपाध्याय कनकवर्मा तथा भोट देशीय लोचावा ''पा–छप–ञि–मा–ग्रग्स'' के द्वारा संशोधित किया गया है।उक्त ग्रंथ का परम पावन दलाई लामा जी द्वारा बिहार स्थिति बोधगया में 14–16 जनवरी 2018 तक प्रवचन हेतु संकलित की।

कैलाश चन्द्र बौद्ध

धर्मशाला,हिप्र

भवतु सर्वमंगलम्